शोधकर्त्री का नाम : नीलम रानी

शोध निर्देशक का नाम : डॉ. नीरज कुमार

विभाग का नाम : हिंदी विभाग

शोध का निर्धारित विषय : 'हिन्दी उपन्यासों में गांव का बदलता स्वरूप' (1991 से अद्यतन)

संक्षिप्तीकरण

जामिया मिल्लिया इस्लामिया की विद्या वाचस्पति (पीएच.डी.) की उपाधि हेतु मेरे शोध प्रबन्ध का विषय निर्धारित हुआ था- **'हिन्दी उपन्यासों में गांव का बदलता स्वरूप' (1991 से अद्यतन)।** सम्पूर्ण अध्ययन और विश्लेषण के दौरान मैंने पाया कि गाँव का स्वरूप निरन्तर बदल रहा है और हिंदी उपन्यास इसका यथार्थ प्रस्तुतीकरण करते हैं। बदलाव की निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया में गाँव चेतना सम्पन्न हुए हैं। जीवन-मूल्य और संबंध आधुनिक बन रहे हैं। दलितों एवं अल्पसंख्यकों की संघर्ष चेतना ने जातीय समीकरणों की जटिलता पर प्रहार किया है। ग्रामीण स्त्रियाँ हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रहीं हैं। राजनीति और साम्प्रदायिकता ने ग्रामीण सामाजिकता-सामुदायिकता को खंडित किया है। ग्रामीणों की भाषा का स्वरूप भी बदल रहा है।

हिंदी उपन्यासों में गाँव के बदलते स्वरूप की साहित्यिक विरासत पूर्ववर्ती उपन्यासों से ही मिल जाती है। शोध के लिए निर्धारित सीमा से पूर्व के उपन्यासों में ग्राम्य-जीवन की समस्याओं के चित्रण से लेकर समसामयिक जरूरतों के अनुसार बदलते गाँव का उल्लेख मिलता है। सन् 1991 से अद्यतन (अद्यतन से तात्पर्य सन् 2010 तक) हिंदी उपन्यास गाँव के बदलते स्वरूप के कारणों, प्रभावों और परिणामों का त्रिआयामी उल्लेख करते हैं। शोध प्रबन्ध 19वीं सदी के अन्तिम दशक से 21वीं सदी के पहले दशक तक के कालखण्ड के उपन्यासों के आधार पर बदलते गाँव की तस्वीर प्रस्तुत करता है जिसका मुख्य केन्द्र अद्यतन हिंदी उपन्यास हैं।

यह शोध प्रबन्ध विषय-वस्तु के आधार पर जितना साहित्यिक है उतना ही यह समाजशास्त्रीय भी हो गया है। विवेच्य कालखण्ड के आधार पर इसकी समसामयिकता

बढ़ जाती है। अतः शोध प्रबन्ध की साहित्यिकता, सामाजिकता और समसामयिकता इसकी उपयोगिता को त्रिस्तरीय बना देती है।

अध्ययन के दौरान मैंने पाया कि 'गाँव बदल रहे हैं'- इस बात को जितना प्रचारित किया जा रहा है, ज़मीनी हकीकत उससे अलग है। आज भी आदिवासी-जनजातीय एवं पहाड़ी ग्रामीण इलाके अपने पिछड़ेपन में पारम्परिक जीवनयापन कर रहे हैं। बदलावों का व्यापक असर महानगरों के आसपास बसे गाँवों पर ही दिखाई देता है। बदलाव की प्रक्रिया की सबसे बड़ी विडम्बना यह रही कि 'गाँव' न तो गाँव ही रह पाए और न शहर ही बन पाए। बदलावों के चलते ग्रामीण धरोहर की लुप्तता एक अव्यक्त पीड़ा बन गई है। अतः बदलावों का सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह से असर हुआ है। गाँव में विघटन और नवनिर्माण साथ-साथ चल रहे हैं।

शोध-प्रबन्ध ग्रामीण यथार्थ को उसकी परम्परा और परिवर्तनशीलता के साथ प्रस्तुत करता है। यह यथार्थ ग्रामेत्तर लोगों के समक्ष अभावग्रस्त ग्रामीणों की वास्तविकता प्रस्तुत करने का प्रयास करता है जिसकी अत्यन्त आवश्यकता है। ग्रामीण-यथार्थ गाँव से जुड़ी नीतियों व योजनाओं के निर्धारण व निर्माण को सही दिशा देने में उपयोगी भूमिका निभा सकता है। ग्रामीण स्त्रियों, दलितों और अल्पसंख्यकों के जीवन को सुधारने के लिए नवीन उपायों को दिशा देने में सहयोग दे सकता है। कर्मठ किसानों के प्रति आदर, सम्मान, प्रेम भावना आदि को जगाने का कार्य कर सकता है ताकि आत्महत्या जैसे संवेदनशील मुद्दों का निवारण हो सके। दिशाभ्रमित ग्रामीण युवा वर्ग की ऊर्जा का सद्पयोग किए जाने की आवश्यकता को स्पष्ट करता है। गाँव से पलायन करते हुनर को रोकने की जरूरत पर बल देता है। शोध-प्रबन्ध के माध्यम से उभरकर आए उपर्युक्त तथ्य तीन चौथाई अभिन्न भारत की सच्चाई है जो विकसित भारत के स्वप्न को साकार करने के लिए गौण समझी जाने वाली लेकिन बेहद प्रमुख बातें हैं। यदि गाँव को साथ लेकर नहीं चला गया तो भारत विकास की दौड़ से निकल जाएगा।

शोध-प्रबन्ध की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है कि यह भारत के छह लाख से ज्यादा गाँवों की यथार्थता को प्रतिष्ठित करता है। ग्रामेत्तर भारत के समक्ष ग्रामीण भारत की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करता है। लगभग सवा सौ वर्षों के सुदीर्घ कालखण्ड के हिंदी उपन्यासों के आधार पर गाँव के संरचनात्मक, वैचारिक और भाषायी परिवर्तनों को प्रस्तुत करता है। बदलावों के कारण, प्रभाव और परिणाम एक साथ समाहित करता है। शोध-प्रबन्ध के साहित्यिक, सामाजिक और समसामयिक पक्ष इसकी अन्यतम उपलब्धि है।